तृतिया सस्करण ५०००

मूल्य ५-०० रुपये

पुस्तक मिलने के पते :-

पन्नालाल बच्छराज खटेड
लाडनूवाला चरिटेबल ट्रस्ट
श्यामगज, बरेली-२४३००५
उत्तर प्रदेश

जैन ब्रादर्स
४२, श्यामगज
(इलाहाबाद बैंक)
बरेली-२४३००५

बच्छराज नौरतनमल
४२, श्यामगज बरेली

आसाम कमर्शियल कम्पनी
७, बरुवा मार्केट, फैन्सी बाजार
गोहाटी-७८१००१

मे प्रकाशित किया जाता है। स्वर्गीय स्वामीजी श्री श्री १०८ श्री सूरजमलजी महाराज तेरापंथी साधु सम्प्रदाय के एक उदीयमान, विद्वान मुनिराज थे। सिर्फ ३० वर्ष की उम्रमे ही आप गत श्रावण शुक्ल ५ के दिन स्वर्गधाम पधार गये। आपने बम्बई प्रान्त मे विचरते हुए बहुत से भव्य जीवों को अपनी अपूर्व व्याख्यान शैली से प्रतिबोध दिया। सुज्ञ पाठक इसे विशेष ध्यान पूर्वक पढ़ें और मनन करें —यही निवेदन है।

प्रकाशक

साधु-धर्म

विश्वव्यापी दृष्टि से देखते हुए भी 'तेरापंथ' अर्थात 'तुम्हारा पंथ' यह जो नाम दिया गया है, वह योग्य और फबता हुआ होने से हर प्रकार से वाजबी है ।

पंच महाव्रत

ऊपर लिखे हुए पांच महाव्रत कौन-कौन से हैं? वे इस प्रकार हैं—हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, और परिग्रह ।

इन पांचों का जो त्याग करता है, उसको पांच महाव्रत धारण करनेवाला कहा जाता है ।

पहिला महाव्रत

अहिंसा परमोधर्मः जैन साधु को हिंसा का त्याग सब प्रकार से अर्थात् तीन "करण" और तीन "योग" (नवकोटि) से यावज्जीवन होता है ।

प्रश्न—नवकोटि के पच्चक्खाण (त्याग) किस रीति से होते हैं?

उत्तर—खुद करे नहीं दूसरे के पास करावे नहीं और करते हुए का अनुमोदन न करे और न उसको ठीक समझे, ये तीन नाम 'करण' के हैं ।

मन वचन और काया, इन तीनों का नाम योग है । एक-एक योग के ऊपर तीन-तीन करण गिनने से नवकोटि के तम पच्चक्खाण नीचे माफिक होते है—

प्रश्न—जीव कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—छः प्रकार के, उनके नाम—१ पृथ्वीकाय, २ अप्पकाय, ३ तेऊकाय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय और ६ त्रसकाय हैं।

प्रश्न—पृथ्वीकाय किसको कहते हैं ?

उत्तर—जमीन से खोदी हुई मिट्टी, हीरा, माणिक, रत्न, गेरू, गोपी चन्दन, मुरद हींगलू, हडताल वगैरह को पृथ्वीकाय कहते हैं।

प्रश्न—अप्पकाय किसको कहते हैं ?

उत्तर—कूँवा, तालाव, वापी वगैरह का पानी।

प्रश्न—तेऊकाय जीव कौन से हैं ?

उत्तर—अग्नि, देवता वगैरह।

प्रश्न—वायुकाय जीव कौन से कहलाते हैं ?

उत्तर—हवा।

प्रश्न—वनस्पतिकाय जीव कौन से होते हैं ?

उत्तर—झाड़, पान, फूल, हरे शाकादि।

प्रश्न—त्रसकाय जीव कौन से हैं ?

उत्तर—कीडा, मक्खी, मच्छर, गाय, भैंस, पशु-पक्षी, तथा स्त्री-पुरुष वगैरह चलते-फिरते समस्त जीव।

*इन्द्रिय (organs या senses) के हिसाब से इन छः काय जीवों को पांच भागों मे विभक्त किया गया है। जैसे—एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पचेन्द्रिय।

---

* सम्पादक की ओर से

सब प्रकार से होते हैं। जिस दिन से यह छः प्रकार के जीवों की हिंसा नहीं करने के प्रत्याख्यान लेता है, तब से वह अनगारी होता है अर्थात् सब जीवों को अपने समान समझ कर उनको सब प्रकार के कार्यों से निवृत्त होता है। 'सूयगडांग' सूत्र में भी कहा है— साधु छः काय जीवों के लिए पिता की तरह है और छः प्रकार के जीव उसके पुत्र के समान हैं।

प्रश्न—एकेन्द्रिय आदि अनन्त जीवों के बलिदान से अगर पञ्चेन्द्रिय जीवों को, आराम होता हो तो क्या साधु-धर्म पुण्य की स्थापना कर सकता है या नहीं।

उत्तर—छः कायों में से यदि एक काय की भी हिंसा होती हो तो उस कार्य के लिए साधु को आदेश अथवा उपदेश नहीं देना चाहिये क्योंकि वह छः काय जीवों के पिता तुल्य है, और छः काय जीव उसके पुत्र के समान हैं, और साधारण रीति से जो पिता पितृ-धर्म का पालन करता हो, वह इस प्रकार का उपदेश कभी नहीं कर सकता कि बड़े लड़के की रक्षा के लिये छोटे लड़के के भक्षण किये जाने के काम में धर्म या पुण्य होता है। इसलिये शुद्ध आचार विचार वाले जैन साधु को इस प्रकार का उपदेश करना शोभा ही नहीं देता।

प्रश्न—यदि कोई ऐसा कहे कि एकेन्द्रिय की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय की पुण्याई अनन्त गुणी अधिक है, तो फिर जिस कार्य में पञ्चेन्द्रिय के पोषण के लिये एकेन्द्रिय की हिंसा होती हो तो उस कार्य में साधु धर्म-पुण्य कहे, तो उसमें क्या बाधा ?

[illegible]

[illegible] जीव उसके पुत्र के समान है।

प्रश्न—[illegible] जीवों के [illegible] एकेन्द्रिय जीवों का, आरम्भ होता हो [illegible] पुण्य की स्थापना कर सकता है या नहीं।

उत्तर—छः कायों में यदि एक काय की भी हिंसा होती हो तो उस कार्य के लिए साधु को आदेश अथवा उपदेश नहीं देना चाहिये क्योंकि वह छः काय जीवों के पिता तुल्य है, और छः काय जीव उसके पुत्र के समान हैं, और साधारण रीति से जो पिता पितृ व धर्म का पालन करता हो, वह इस प्रकार का उपदेश कभी नहीं कर सकता कि बड़े लड़के की रक्षा के लिये छोटे लड़के के भक्षण किये जाने के काम में धर्म या पुण्य होता है। इसलिये शुद्ध आचार विचार वाले जैन साधु को इस प्रकार का उपदेश करना शोभा ही नहीं देता।

प्रश्न— यदि कोई ऐसा कहे कि एकेन्द्रिय की अपेक्षा पचेन्द्रिय की पुण्याई अनंत गुणी अधिक है, तो फिर जिस कायमे पचेन्द्रिय के पोषण के लिये एकेन्द्रिय की हिंसा होती हो तो उस कार्य मे साधु धर्म-प्ररूपण करे, तो उसमें क्या बाधा ?

हिसाब से इन्द्रियों में अन्तर होता है, जिस से पुण्याई के हिसाब से एकेन्द्रिय गरीब और पचेन्द्रिय भाग्यवान् होते हैं, परन्तु साधु को तो उसी धर्म का प्ररूपण करना चाहिये जो गरीब और भाग्यवान् के पक्षपात से रहित है, क्योंकि वह तो छः प्रकार के जीवों के पिता समान है, और यदि वही पिता तुल्य होकर ऐसी बात कहे कि जिससे बड़े लड़के पचेन्द्रिय जीवों की रक्षा के लिये छोटे लड़कों के तुल्य अनन्त एकेन्द्रिय जीवोंका नाश होता हो अर्थात् जो उन कार्यों मे धर्म-पुण्य की प्ररूपणा करता हो वह छः काय जीवों का पिता नहीं कहलावेगा, परन्तु अपने पितापन के कर्तव्य से च्युत हुआ कहा जायगा।

[illegible] साधु का नाम छः काय के जीवों का प्रतिपालक है तो फिर एकेन्द्रिय को मार कर पंचेन्द्रिय को पोषण करने में पुण्य है, ऐसी प्ररूपणा करने से, छः काय जीव के प्रतिपालन का जो दावा किया जाता है वह गलत हो जाता है। फिर तो उनका नाम सिर्फ पंचेन्द्रिय प्रतिपालक, ऐसा कहना चाहिये। और छः कायके प्रतिपालक का जो दावा है, वह कायम नहीं रह जाता। यदि उनको छः काय प्रतिपालक का दावा सच्चा रखना हो तो किसी भी [illegible] (जिसमें जीव-हिंसा होती हुई है) कार्य में पुण्य होता है [illegible] प्ररूपणा नहीं करनी चाहिए। इसी लिए भगवान ने साधु [illegible] नहीं कोई [illegible] प्ररूपणा करने का आदेश [illegible]

वह उसे मौन कर लेना चाहिये, क्योंकि यदि वह ऐसा कहे कि मैंने हरिण को नहीं देखा तो उसके दूसरे महाव्रत का भंग होता है और यदि वह यह कहे कि उसने हरिण को देखा है तो शिकारी हरिण को मारने के लिये जायगा जिससे साधु का पहला महाव्रत भंग होगा पर, मौन रहने से किसी भी महाव्रत का विरोभाग नहीं होगा। शास्त्र—आचारांग सूत्र अध्ययन १२, गाथा ८ दशवैकालिक सूत्र के छट्ठे अध्ययन की गाथा १२ में भी ऐसा कहा हुआ है कि साधु को अपने लिये या दूसरे के लिये झूठ बोलना नहीं कल्पता। यह गाथा नीचे लिखत है।

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया।
हिंसगं न मुस बूया, नो वि अन्न वयावए ॥

तो फिर हरिण के लिये झूठ कैसे बोला जा सकता है ?

तीसरा महाव्रत

तीसरे महाव्रत में साधु को चोरी करने के पच्चक्खाण (त्याग) ऊपर की तरह ही नौ कोटि के ही समझना चाहिये।

प्रश्न—चोरी कितने प्रकार की है ?

उत्तर—दो प्रकार की— सचित और अचित वस्तु की।

प्रश्न—सचित का अभिप्राय क्या होता है ?

उत्तर—सचित अर्थात जीव सहित।

प्रश्न—अचित का अर्थ क्या है ?

उत्तर—निर्जीव। अचित में आहार, जल, वस्त्र, पात्र, पुस्तक

[illegible]

और तीसरा महाव्रत भंग होता है।

चौथा महाव्रत

चौथे महाव्रत में साधु को ऊपर मुजब नौ कोटि से कुशील अब्रह्मचर्य के पच्चक्खाण समझने चाहिये।

प्रश्न—कुशील कितने प्रकार का है?

उत्तर—तीन प्रकार का—(१) देवता-देवाङ्गना सम्बन्धी, (२) स्त्री-पुरुष सम्बन्धी, (३) तीर्य्यंच-तिर्य्यंचनी सम्बन्धी। इन तीनों प्रकार के कुशील सेवन करने का साधु को सब प्रकार से त्याग होता है।

प्रश्न—ब्रह्मचारी साधु अकेली स्त्री अथवा अकेली साध्वी से बात कर सकता है कि नहीं?

प्रश्न—साधु के लिये वस्त्र, पुस्तक, पात्र रखने की शास्त्र मर्यादा क्या है जिससे उनको धन परिग्रह का पाप नहीं लगे और साधु का महाव्रत कुशल (निर्विघ्न) रहे ?

उत्तर—व्यवहार सूत्र के दूसरे उद्देशक मे कहा है और आचारांग सूत्र मे भी कहा है कि एक साधु को तीन पछेवड़ी (वस्त्र) और तीन पात्र रखने कल्पते हैं। शास्त्र की इस मर्यादा मुजब अगर ये रखें तो साधु को धन-परिग्रह का पाप नहीं लगता और लिये हुये महाव्रत टूटने के बदले कुशल रहे, क्योंकि इतनी चीजें बताए प्रमाण मे रख सकने की जिन भगवान् की आज्ञा है। परन्तु आज्ञा उल्लंघन कर परिमाण से अधिक ये चीजें रखने मे आवें तो महाव्रत टूटता है और साधु परिग्रह-धारी बनता है।

प्रश्न—वस्त्र, पुस्तक, पात्र वगैरह अच्छे हों और पीछे मन माफिक मिलने की उम्मीद न हो तो उस हालत मे कपाट भर (याच) कर रख धरने मे क्या बाधा आती है ?

उत्तर—शास्त्रोक्त मर्यादा को छोड अधिक रखने से जिन आज्ञा की चोरी लगती है और उससे तीसरा महाव्रत टूटता है और दूसरे धन-परिग्रह लगता है, क्योंकि मर्यादा उपरान्त जो वस्त्र, पुस्तक, पात्र इत्यादि रखता है वह परिग्रह-धारी कहलाता है जिससे पाँचवाँ महाव्रत टूटता है। अगर ऊपर बताये मुजब वस्तुए कपाट पिटारे भर करके रखी जांय तो प्रतिदिन उनका प्रडिलेहन (निरीक्षण) नहीं हो सकता और प्रडिलेहन किये बिना यदि साधु थोड़े भी वस्त्र, अथवा पात्र वगैरह रखता है तो उसके लिये

[illegible]

( ) [illegible]

[illegible] या नहीं ?

[illegible] दूसरे करण से [illegible] लगता है।

प्रश्न—साधु के उपदेश बिना ही किसी गृहस्थ ने अपनी मर्जी से उनके लिये मकान बनाया हो या बिकता हुआ मोल लिया हो तो उसमें रहना साधु को कल्पता है या नहीं ?

उत्तर—साधु के लिये किसी गृहस्थ ने उपाश्रय बनाया हो या बिकता हुआ मोल लिया हो या किराये पर रखा हो या इस तरह स्थापित रखा हो कि यह मकान हमेशा मुनि महाराजों के लिये ही है और उसको किसी दूसरे काम में नहीं लाया जायगा तो, इस प्रकार के स्थानक, मकान, अथवा उपाश्रय में साधु को उतरना नहीं कल्पता। और अगर कोई उतरे तो उसके पांच महाव्रतों में से वस्तु-परिग्रह नाम का व्रत तीसरे करण से टूटता है. क्योंकि

यह कह दे कि उसको आज दाल और रोटी—इन दोनों द्रव्यों के सिवा भोजन करने का पचक्खाण है तो वे बादाम का हलुआ (सीरा) और बरफी बनावें ही नहीं कारण कि घरका माल मुफ्त मे कौन गँवाता है ? उसी प्रकार यदि साधु पहले ही कह दे 'मेरे लिये उपाश्रय नहीं बनावोगे कारण कि वह मुझको नहीं कल्पता और यदि ऐसा होने पर भी बनवाओगे तो अपने घर का धन गुमावोगे तथा दुर्गति का खाता बांधोगे। इस प्रकार यदि साधु खुले आम कह देवे तो फिर कोई भी श्रावक अपनी गाठ का धन देकर पाप की गठरी मोल नहीं ले। परन्तु साधु तो अल्प पाप और बहुत निर्जरा दिखा कर गाम-गाव मे स्थानक उपाश्रय का उपदेश कर उतारा करवाते है। इस प्रकार करने से वे एक घर की ममता छोड कर अनेक घरों की ममता अपने पल्ले लगाते है। इस कारण से साधु को भी अपना स्थायी स्थानक या उपाश्रय नहीं रखना चाहिये। समय पर बाजार, हवेली, बगला आदि जहाँ कहीं भी सुविधा प्राप्त हो जाय वहीं अप्रतिबन्ध रूप से रह जाना चाहिये; परन्तु साधु को एक ही मकान मे उतरने का प्रतिबन्ध नहीं रखना चाहिये – यदि वह प्रतिबध रखता है तो वस्तु-परिग्रह का पाप लगता है और पाँचवाँ महाव्रत विलीन होता है।

७—द्विपद परिग्रह—साधु को तन, मन और वचन से दास दासी, नौकर चाकर नहीं रखने चाहिये, दूसरों से रखवाना भी नहीं चाहिये और कोई रखता हो तो उसका अनुमोदन भी नहीं करना चाहिये।

[illegible]

[illegible] है। [illegible]

ने अपने [illegible] गीतार्थों [illegible]

साधु भी को पत्र व्यवहार करते [illegible] तो ऐसे नहीं होते हैं, [illegible]

चिन्ता नहीं करनी होगी कारण [illegible] को भी [illegible]

करने की चिन्ता है ही नहीं। इसके [illegible] की जो चिन्ता होती
है वह तो गृहस्थों को ही होती है। गृहस्थ का काम यदि पांच पचों
से चलता हो तो पत्र-व्यवहार करने वाले साधु को पचास पत्र तो
भेजने ही चाहिएँ, क्योंकि गृहस्थ को तो अमुक घरकी ही संभाल
रखनी होती है, परन्तु पत्र व्यवहार करने वाले गच्छाधिपति साधु
महाराजों को तो बहुत से स्थानों की संभाल रखनी होती है। उदा-
हरण के तौर पर अमुक श्रावक का कागज नहीं आया, बीमार थे
सो अब किस तरह है, किस तरह नहीं, इसलिये एक पत्र लिखो,
अमुक श्रावक जी आने वाले थे, वे क्यों नहीं आये, इसलिये एक पत्र
उनको लिखो; अमुक लेख छपने, प्रकाशित होनेको था वह अभी तक
क्यों नहीं छपा ? इस वास्ते एक कागज वहाँ लिखो, अमुक लहिया
(लिखने वाला) को सूत्र लिखने का कहा था, वह अभी तक
क्यों नहीं लिखा गया, एक पत्र वहाँ लिखो, अमुक पुस्तक लिखानी
थी, किन्तु अभी तक रुपयों का प्रबन्ध नहीं हुआ, अत एक पत्र
अमुक सेठ के वहाँ लिखो। इत्यादि अनेक स्थान मे पत्र लिखने
का धन्धा पत्र-व्यवहार करने वाले साधु को बड़े पैमाने मे हर रोज
चालू रहता है और उसके लिये गृहस्थ द्वारा ऊपर कहे मुजब काम

प्रश्न—साधु के लिये वस्त्र, पुस्तक, पात्र रखने की शास्त्र मर्यादा क्या है जिससे उनको धन परिग्रह का पाप नहीं लगे और साधु का महाव्रत कुशल (निर्विघ्न) रहे ?

उत्तर—व्यवहार सूत्र के दूसरे उद्देशक मे कहा है और आचारांग सूत्र मे भी कहा है कि एक साधु को तीन पछेवड़ी (वस्त्र) और तीन पात्र रखने कल्पते हैं। शास्त्र की इस मर्यादा मुजब अगर ये रखें तो साधु को धन-परिग्रह का पाप नहीं लगता और लिये हुये महाव्रत टूटने के बदले कुशल रहे, क्योंकि इतनी चीजें बताए प्रमाण मे रख सकने की जिन भगवान् की आज्ञा है। परन्तु आज्ञा उल्लंघन कर परिमाण से अधिक ये चीजें रखने मे आवें तो महाव्रत टूटता है और साधु परिग्रह-धारी बनता है।

प्रश्न—वस्त्र, पुस्तक, पात्र वगैरह अच्छे हों और पीछे मन माफिक मिलने की उम्मीद न हो तो उस हालत मे कपाट भर (याच) कर रख धरने मे क्या बाधा आती है ?

उत्तर—शास्त्रोक्त मर्यादा को छोड अधिक रखने से जिन आज्ञा की चोरी लगती है और उससे तीसरा महाव्रत टूटता है और दूसरे धन-परिग्रह लगता है, क्योकि मर्यादा उपरान्त जो वस्त्र, पुस्तक, पात्र इत्यादि रखता है वह परिग्रह-धारी कहलाता है जिससे पाँचवाँ महाव्रत टूटता है। अगर ऊपर बताये मुजब वस्तुए कपाट पिटारे भर करके रखी जांय तो प्रतिदिन उनका प्रडिलेहन (निरीक्षण) नहीं हो सकता और प्रडिलेहन किये बिना यदि साधु थोड़े भी वस्त्र, अथवा पात्र वगैरह रखता है तो उसके लिये

[illegible]

[illegible] है या नहीं ?

[illegible] दूसरे करण से [illegible] टूटता है।

प्रश्न—साधु के उपदेश बिना ही किसी गृहस्थ ने अपनी मर्जी से उनके लिये मकान बनाया हो या बिकता हुआ मोल लिया हो तो उसमें रहना साधु को कल्पता है या नहीं ?

उत्तर—साधु के लिये किसी गृहस्थ ने उपाश्रय बनाया हो या बिकता हुआ मोल लिया हो या किराये पर रखा हो या इस तरह स्थापित रखा हो कि यह मकान हमेशा मुनि महाराजों के लिये ही है और इसको किसी दूसरे काम में नहीं लाया जायगा तो इस प्रकार के स्थानक, मकान, अथवा उपाश्रय में साधु को उतरना नहीं कल्पता। और अगर कोई उतरे तो उसके पांच महाव्रतों में से वस्तु-परिग्रह नाम का व्रत तीसरे करण से टूटता है. क्योंकि

यह कह दे कि उसको आज दाल और रोटी—इन दोनों द्रव्यों के सिवा भोजन करने का पचक्खाण है तो वे बादाम का हलुआ (सीरा) और वरफी बनावें ही नहीं कारण कि घरका माल मुफ्त मे कौन गंवाता है ? उसी प्रकार यदि साधु पहले ही कह दे 'मेरे लिये उपाश्रय नहीं बनावोगे कारण कि वह मुझको नहीं कल्पता और यदि ऐसा होने पर भी बनवाओगे तो अपने घर का धन गुमाओगे तथा दुर्गति का खाता बांधोगे। इस प्रकार यदि साधु खुले आम कह देवे तो फिर कोई भी श्रावक अपनी गाठ का धन देकर पाप की गठरी मोल नहीं ले। परन्तु साधु तो अल्प पाप और बहुत निर्जरा दिखा कर गांव-गांव मे स्थानक उपाश्रय का उपदेश कर उतारा करवाते हैं। इस प्रकार करने से वे एक घर की ममता छोड कर अनेक घरों की ममता अपने पल्ले लगाते हैं। इस कारण से साधु को भी अपना स्थायी स्थानक या उपाश्रय नहीं रखना चाहिये। समय पर बाजार, हवेली, बगला आदि जहाँ कहीं भी सुविधा प्राप्त हो जाय वहीं अप्रतिबन्ध रूप से रह जाना चाहिये, परन्तु साधु को एक ही मकान मे उतरने का प्रतिबन्ध नहीं रखना चाहिये – यदि वह प्रतिबन्ध रखता है तो वस्तु-परिग्रह का पाप लगता है और पांचवां महाव्रत विलीन होता है।

७—द्विपद परिग्रह—साधु को तन, मन और वचन से दास दासी, नौकर चाकर नहीं रखने चाहिये, दूसरों से रखवाना भी नहीं चाहिये और कोई रखता हो तो उसका अनुमोदन भी नहीं करना चाहिये।

नहीं रखवाना चाहिये और जो रखा जाय उसके पास पढे तो द्विपद परिग्रह का पाप लगता है। ऐसा करने से पंडित के वेतन का इन्तजाम भी करना पडता है। इस हिसाब से दूसरे के पास परिग्रह रखवाना पड़ता है जिससे दूसरे करण से पाँचवाँ महाव्रत भंग होता है।

(८)—चौपद परिग्रह अर्थात् गाय, भैंस, घोडा, हाथी, बकरा इत्यादि न तो साधु खुद रखे, न रखावे और न रखते हुए का अनुमोदन करे मन, वचन, और काया से।

प्रश्न—साधु गृहस्थ को यह कहे या नहीं कि तुम्हे इतनी गायें और भैंसे तो रखनी ही चाहिये ?

उत्तर—गाय, भैंस चौपद-परिग्रह में है। उनको साधु स्वयं रखना छोड कर दूसरों को रखने का उपदेश करे तो, दूसरे करण से 'चौपद परिग्रह' का पाप लगता है और पाँचवाँ महाव्रत तिरोभाव को प्राप्त होता है।

प्रश्न—कितनेक लोग ऐसा कहते हैं कि आनन्द-श्रावक ने चालीस हजार गायें रखी थीं और वीर-प्रभु ने रखवाई थीं तो, उनका महाव्रत क्यों नहीं टूटा ?

उत्तर—आनन्द-श्रावक ने चालीस-हजार गायें अपनी इच्छा से रखी थीं, पर महावीर स्वामी ने उनको रखने के लिये नहीं कहा था और यदि महावीर स्वामी ने ही रखवाई होती तो आनन्द-श्रावक को उन्होंने ऐसा कहा होता कि हे आनन्द ! तू चालीस हजार की मर्य्यादा क्यों करता है ? ज्यादा रखेगा, तो ज्यादा पुण्य होगा।

की वृद्धि करने में आता तो भी में फर्क मिलता है। परन्तु ...
आज्ञा का भंग हो तो, वह करनी लेखे में नहीं आती। और जो
भगवान की आज्ञा को लोप कर, पोताना महाजन का मोड़ कर चश्मा
लगाने में जो कोई व्यक्ति ज्ञान-ध्यान की वृद्धि समझता हो तो,
उसके अनुसार अगर किसी साधु के कान में जख्म हो गया हो
और उसके कान में बहरापन बढ़ कर कम सुनाई देता हो तो
उसके व्याख्यान देनेमे तथा प्रश्नोत्तर करने में अधिक अड़चन
मालूम पड़ती देखे तो, उस समय ज्ञान-ध्यान की वृद्धि का लाभ
लेने के लिये अगर उसके कान में बटरी चढ़ाई जाय तो फिर क्या
बाधा ? और अगर मुंह के दांत गिर जाने पर दांतों की बत्तीसी
चढ़ाई जाय तो क्या बाधा ? दांत का चौगट बैठा देने में स्पष्ट
उच्चारण करने की सुविधा हो जाती है और लोग सुविधापूर्वक
यानी आसानी से धर्म-उपदेश समझने का लाभ उठा सकते हैं।
यह भी तो ज्ञान-ध्यान की वृद्धि के लिये ही है। और फिर अगर
किसी साधु के पैर में जख्म हो गया हो तो ज्ञान-ध्यान की वृद्धि
के लिये अगर वह रेल-गाड़ी में ही विहार करे तो क्या बाधा ?
क्योंकि, ग्राम-ग्राम फिरने से बहुत से श्रावकों को उपदेश मिलेगा।
यह भी तो ज्ञान-ध्यान की वृद्धि के लिये ही है।

अब विचार कीजिए कि जो ज्ञान-ध्यान की वृद्धि के लिये
चश्मा चढ़ाया जाय तो फिर कान से सुनने के लिये बैटरी रखे,
स्पष्ट उच्चारण करने के लिये दांत बँधावे या दांत का चौखट लगावे
और ग्राम-ग्राम में उपकार करने के लिये पग में जख्म होने से

झूठ बोलना है, क्योंकि चोरी में भी तो [illegible] की चोरी हुई है
इस हिसाब से दूसरा व्रत भी समाप्त हो जाता है। [illegible]
की प्रभु-आज्ञा नहीं है। इस हिसाब से आज्ञा की चोरी हुई और
तीसरा महाव्रत भी समाप्त हुआ। अब चौथे व्रत की बात रही।
कुशील दो प्रकार का है—एक तो स्त्री-पुरुष के भोग-सम्बन्धी
और दूसरा आचरण-सम्बन्धी कुशील। आरम्भ और परिग्रह के
कार्यों में आदेश और उपदेश द्वारा भाग लेने से आचार विषयक
कुशील है। इस कारण से चौथा महाव्रत भी टूट जाता है, क्योंकि
परिग्रह एकत्रित करने में आचार की कुशीलता हुई, और जो परिग्रह
के फण्ड के लिये उपदेश करते हैं, उसमें पाँचवाँ महाव्रत प्रारम्भ में
ही टूट जाता है। इस प्रकार एक महाव्रत के टूटने से पाँचों ही
टूट जाते हैं। साधु कभी भी चार महाव्रतधारी या तीन व्रत-धारी
नहीं कहलाते। इस रीति से हरएक महाव्रत पर विचार करना
चाहिये कि एक महाव्रत के टूटने से पाँचों के पाँचों ही एक
साथ टूट जाते हैं। जिस प्रकार मोती की माला में से एक मोती
टूट पड़ने पर सारे-के-सारे मोती नीचे गिर पड़ते हैं, ठीक उसी
प्रकार महाव्रत का हिसाब समझना चाहिये।

आठ प्रवचन माताएँ

ऊपर बताये अनुसार पाँच महाव्रत के पालन करनेवाले साधु
को आठ प्रवचन माता के बोलों को पूरी तरह से पालन करना

भाषा समिति

प्रश्न—भाषा समिति का क्या अर्थ ?

उत्तर—भाषा समिति का यह अर्थ है कि साधु को निरवद्य सत्य भाषा बोलनी चाहिए, सावद्य (पापयुक्त) भाषा नहीं बोलनी चाहिए, इतना ही नहीं, परन्तु सत्य होते हुए भी यदि वह सावद्य (पापयुक्त) हो तो वह भी नहीं बोलनी चाहिए। कहा है:—

भाषा विचारीने निरवद्य बोलिये रे, कर्कश कठोर भूल मत बोल रे।
सावद्य भाषा मति बोले सर्वथा रे, मीठो बोल तो पहिलो तोल रे॥
श्री जिन गणधर गौतम ने कहे।

प्रश्न—सावद्य भाषा किसको कहना चाहिये।

उत्तर—जिस वाक्य को बोलने में पाप लगे, वैसी भाषा नहीं बोलनी चाहिये। उदाहरण स्वरूप—"चूल्हा देख कर जलाना," और "पानी छान कर पीना" यह सावद्य भाषा हुई, क्योंकि इसमें कार्य करने की आज्ञा दी गई है।

निरवद्य भाषा बोलने में पाप नहीं है। जैसे-'बिना देखे चलना नहीं चाहिये' या 'बिना छाना हुआ पानी नहीं पीना चाहिये'—यह भाषा निरवद्य है, क्योंकि इसमें कार्य्य करने की आज्ञा नहीं दी गई है, [illegible] पाप लगता है।

श्री दशवैकालिक सूत्र के सातवें अध्ययन की [illegible] गाथा में

१ [illegible] [illegible]

[illegible] १७ प्रकार की [illegible]

[illegible]

२— उद्देशिक — साधु को उद्देश कर, [illegible] आदि कुई १४ प्रकार की वस्तु उसको दे और साधु [illegible] भोगे तो दोष लगता है,

३ — पुती कर्म — अर्थात उपरोक्त दोष युक्त वस्तुओं का सारी शुद्ध वस्तु के साथ जरा भी मेल-मिलाप करे [illegible] और साधु उसको ले तो दोष लगता है ;

४ — थापित — अर्थात कोई वस्तु साधु के लिये ही स्थापित कर दी गई हो कि अमुक वस्तु साधु के लिये ही है, दूसरा कोई उसको उपभोग या काम मे नहीं लावे — इस प्रकार की वस्तु यदि कोई दे और साधु उसको ले तो दोष लगता है ,

५ — मिश्र — अर्थात सचित्त और अचित्त वस्तुओं को इकट्ठी कर के साधु को दे और साधु उसको ले तो दोष लगता है ,

६ — प्रोहण -- अर्थात आगे पीछे करके साधु को दे और वह उसको ले तो दोष लगता है ,

७ — कोई वस्तु अंधेरे मे हो और साधु को बहकाने के लिये उजाला करके वस्तु दे और साधु उसको ले तो दोष लगता है ,

१—साधु के लिये उद्देश करके अर्थात् साधु के निमित्त आरंभ कर के जो कोई आहार, पानी, वस्त्र, दवा, शय्या पाट, स्थानक या उपाश्रयादि १४ प्रकार की वस्तु बनाई हो, तो उनके भोगने से अणाचार लगता है,

२—साधु के वास्ते कोई वस्तु बिकती हुई लाकर दे तो उसको भोगने से अणाचार लगता है;

३—जिस घर के आहार, पानी, पहले दिन वहरे (ग्रहण किए) हों उसी घर में अगर दूसरे दिन वहरे तो अणाचार लगता है;

४—आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, वगैरह गृहस्थ सामने आकर दे और साधु यदि उनको भोगे तो अणाचार लगता है;

५—रात में आहार, पानी का भोग करे तो अनाचार लगता है,

[illegible] स्नान करे अर्थात् न्हावे तो अणाचार लगता है;

७—सुगन्धित पदार्थ—जैसे इत्र, तेल, फूल, आदि भोगे [illegible] अणाचार लगता है,

[illegible] फूल आदि की माला का भोग करे तो अणाचार लगता [illegible]

[illegible] हवा [illegible] के लिए अगर पंखा हिलावे तो अणाचार [illegible],

१३---सदाव्रत, दानशाला, धर्मादा वगैरह के आहार, पानी, व वगैरह कोई भी वस्तु ले तो अनाचार लगता है ;

१४--शरीर पर तेल वगैरह लगावे तो अनाचार लगता है; (कारणवश छूट समझना चाहिए)

१५--दांत साफ करे तो अनाचार लगता है; (कारणवश छूट)

१६--गृहस्थ को सुख-शाता पूछे तो अनाचार लगता है ;

१७--आरसी अर्थात् काच में मुंह देखे तो अनाचार लगता है,

१८--जूआ खेले तो अनाचार लगता है ;

१९--चौपड़, तास, वगैरह खेले तो अनाचार लगता है ;

२०--मस्तक पर छत्र रखे तो अनाचार लगता है ;

२१--वैद्यकी करे अर्थात् रोगादि पर गृहस्थ को गोली, चूर्ण वगैरह औषधि बतावे तो दोष लगता है ;

२२--पैरों में बूट वगैरह पहने तो अनाचार लगता है ;

२३---अग्नि का आरम्भ समारम्भ करे तो अनाचार लगता है ;

२४---जिसके मकान में उतरे हों, उस घर-स्वामी के घर का आहार, पानी, दवा, वगैरह ले तो अनाचार लगता है ;

२५---गृहस्थ के आसन, पलंग वगैरह पर बैठे तो अनाचार लगता है,

२६---रोगी, तपस्वी, दुर्बल, अर्थात् अशक्त इन तीन के सिवाय

[illegible] है। [illegible]-सूत्र [illegible], [illegible], ३ अध्ययन, ८ [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] से [illegible] कहे गये।

४८—बिना कारण रेच अर्थात् जुलाब ले तो अनाचार लगता है;

४९—बिना कारण आँख में काजल, अंजन, सुरमा वगैरह आँजे तो अनाचार लगता है ;

५०—दातुन करे या मस्सी से रंग करे तो अनाचार लगता है ;

५१—तेलादि से शरीर का मर्दन करे तो अनाचार लगता है; और

५२—शरीर की शुश्रूषा करे तो अनाचार लगता है।

उपरोक्त दोष टाल कर आहार पानी ग्रहण करने वाले साधु और इस प्रमाण से देने वाले गृहस्थ—दोनों की भगवान् ने शुद्ध गति बतलाई है (शास्त्र-सूत्र दशवैकालिक, अध्ययन ५, उद्देश्य १, गाथा १००)। शुद्ध गति के इच्छुक शुद्ध साधुओं को शुद्ध निर्दोष आहार-पानी लेना चाहिये और समझदार श्रावक को उसी माफिक देना अथवा बहराना चाहिये, क्योंकि अशुद्ध आहार आदि लेने वाले और देने वाले दोनों को प्रभु ने महा दुःख का होना बतलाया है।

पहले, अशुद्ध आहार लेने वाले की क्या दशा होती है, वह सूत्र शास्त्र के साथ नीचे लिखा जाता है:—

उत्तराध्ययन सूत्र के २० वें अध्ययन की ४७ वीं गाथा में कहा है कि उद्देशिक अर्थात् जो साधु का लक्ष्य रख कर बनवाई हुई हो वह या साधु के वास्ते ही बिकती हुई कोई वस्तु मोल ली गई हो वह या नित्यपिण्ड अर्थात् नित्य-प्रति एक ही घर का आहार-पानी लेना वह इत्यादि दोषों में से अगर कोई भी दोष वाली वस्तु साधु ग्रहण करे तो वह साधु अग्नि की तरह सर्वभक्षी है और वह मरने के बाद दुर्गति में जाता है।

अल्प आयुष्य को बांधता है, इस प्रकार ठाणांग सूत्र के तीसरे ठाणे में कहा है। और भगवती सूत्र श० ५ उद्देश ६ में अल्प उत्कृष्ट आयुष्य (अर्थात ४८ मिनिट में ६५५३६ बार जन्मे और मरे वह) बांधता है इत्यादि अनेक ही स्थलों पर अशुद्ध आहार, पानी वगैरह १४ प्रकार के दान देने वालों की बहुत दुर्दशा होने का वर्णन है। इसलिये देने वाले दातारों को अपने लिये बनाई हुई वस्तु में से यथाशक्ति संतोष करके ध्यानपूर्वक बहराना या देना चाहिये, और मांगने वाले साधु को भी बहरते समय पूछ कर सब तरह से तपास कर लेना चाहिये। यही एषणा समिति है।

प्रश्न—किसी ग्राम में अगर श्रावकों के दो तीन घर ही हों, और वहां दस बीस साधु विहार करते हुए आए हों उस अवसर पर आधाकर्मी आहार पानी बहरना और सेवन करना चाहिये कि नहीं ?

उत्तर—पहले तो आने वाले साधु को पहले से ही जांच पड़ताल कर—विचार कर आना चाहिये। गांव में गोचरी के कल्पते घर कम हों, तो दो-दो तीन-तीन का साथ कर भिन्न भिन्न दिनों में आना चाहिये। लेकिन सब को एक साथ नहीं आना चाहिये। समझो कि किसी कारण से आना हुआ हो तो उस गांव के गृहस्थों को पहले ही सूचित कर देना चाहिये कि साधुओं के लिये कोई अधिक चीज नहीं बनानी चाहिये क्योंकि साधु के लिये बनाई हुई वस्तु बहरने या भोगने का उनको पच्चक्खाण है। इतने पर भी अगर तुम बनाओगे तो तुम्हारे घर का माल खोकर दुर्गति के अधिकारी होवोगे। इस तरह अशुद्ध आहार बहराने के अनुचित फल पहले ही बता देने

उच्चार पासवण समिति

प्रश्न—उच्चार पासवण समिति का क्या अर्थ होता है ?

उत्तर—उच्चार पासवण समिति अर्थात् जीवजन्तु, हरीलीलोतरी रहित जगहों में—निर्जीव जगह में बाधा के लिए—पेशाबादि के लिये जाना चाहिये और पीछे के प्रहर में जब दो घड़ी दिन बाकी रहे तो रात में परठने के लिये स्थान की पडिलेहणा कर ले। दिन में जहाँ एक वक्त तडका आवे ऐसी जगह में परठना चाहिये।

तीन गुप्तियाँ

मन गुप्ति

प्रश्न—मन गुप्ति का क्या अर्थ ?

उत्तर—मन गुप्ति अर्थात् सावद्य, सांसारिक काम में से मन गुप्त करना अर्थात् रोक कर रखना, परन्तु सांसारिक काम में मन की प्रवृत्ति नहीं करना, वह मन गुप्ति कहलाती है।

वचन गुप्ति

प्रश्न—वचन गुप्ति का अर्थ क्या होता है ?

उत्तर—वचन गुप्ति अर्थात् सावद्य वचन गोप कर रखना अर्थात् रोक कर रखना, किन्तु सावद्य पापकारी शब्द नहीं बोलना। इसका नाम वचन गुप्ति है।

काय गुप्ति

प्रश्न—काय गुप्ति का क्या अर्थ होता है ?

फर्माया है कि इक्कीस हजार वर्ष तक मेरा तीर्थ चलेगा। पुनः उत्तराध्ययन सूत्र के दशवें अध्ययन मे कहा है उसका भावार्थ यह है कि हे गोतम ! पाँचवें आरे के आत्मार्थी-भव्य-जीव होंगे, वे यह कहेंगे कि यह जिन मार्ग बहुत तीर्थंकर देवों द्वारा परूपित है, इसलिये अपने इस रास्तेपर चल कर अप्रमाद पूर्वक विचरण करें, ऐसा निश्चित कर के बहुत से जीव शुद्ध आचार पालकर आत्म-कल्याण करेंगे। अब इन ऊपर दिये हुए उदाहरणों से स्पष्ट रीति से यह सिद्ध होता है कि पाँचवें आरेके अन्त तक आत्मार्थीजीव होंगे और वे शुद्ध-साधुत्व का पालन करेंगे। तो फिर यह किस तरह कहा जा सकता है कि जमाने को लेकर सम्पूर्ण तरीके से साधुपना नहीं पाला जा सकता। पाठको ! जमाना तो अनादि कालसे बदल रहा है, पर उसको लेकर साधुत्व के पालन मे प्रभु ने कोई छूट नहीं रखी है अर्थात् कोई काल आश्रयी मर्यादा नहीं बाँधी है। अगर विचार कर देखा जाय तो शास्त्रकारों ने तो उल्टी सख्त मर्यादा बाँधी है। चौथे आरे मे २२ तीर्थङ्करों के साधुओं को चार महाव्रत पालन करने होते थे (स्त्री-त्याग और परिग्रह के त्याग को एक ही महाव्रत मे समझा जाता था), उसके बदले मे भगवान महावीर ने पाँच महाव्रत पालन करने की आज्ञा दी। पुनः २२ तीर्थङ्करों के साधुओं के पाँच वर्ण के वस्त्र काम मे आते थे। उसके बदले मे वीर प्रभु ने एक श्वेत वर्ण के ही वस्त्र का व्यवहार करने की साधुओंको आज्ञा दी। इत्यादि अनेक मर्यादाएँ चौथे आरे के साधुओं की अपेक्षा पंचम आरे के साधु के लिये विशेष

तो पालन करता ही नहीं है संयम पालने वाला तो शुद्ध आत्मा ही है। साधु के यदि शुद्ध-चारित्र पालने के परिणाम अथवा भाव होते तो आरा कुछ आडा नहीं आता, लेकिन जिसकी आत्मा में चारित्र पालन करने का भाव ही न हो उसके लिए तो आज के जमाने का नाम लेकर मुक्त होना और शिथिलाचारी बनना एक बहुत ही सहज बात है और यह उसके लिये मददकारी बहाना है। और जमाने के नाम पर इस प्रकार प्रचार करने से वर्तमान की कुछ भोली प्रजा विचारी मान भी लेती है कि अगर साधु महाराज चारित्र-पालन में ढीले चलते हैं तो यह कोई साधु महाराज का दोष नहीं, वरन यह जमाना ही ऐसा है। पर इस विषय में न्यायपूर्वक पूरी तरह विचार किया जाय तो नहीं पालन करने वाले के लिये जमाना बेचारा क्या करे? शुद्धचारित्र नहीं पालने वालों ने तो तीर्थङ्करों की मौजूदगी में भी शिथिलता चलाई है, जिसके उदाहरण निम्न प्रकार से हैं:—

(१) श्री आदिनाथ भगवान के कितनेक साधु शुरू में आहार-पानी न मिलने से शिथिलाचारी बन कर धर्म-पतित हो गये थे।

(२) श्री पार्श्वनाथ भगवान की २०६ साध्वियों (आर्याएं) साधुपने में हाथ-पैर वस्त्र आदि धोने के दोष लगा कर चारित्र-भञ्जक हो गई थीं। (शास्त्र-सूत्र, ज्ञाता, श्रुत स्कन्ध—२)

(३) पुन. गर्गाचार्य्य के शिष्य गलीहार गधे के समान अविनीत हुए थे। (शास्त्र-उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन—२७)

(४) अरिष्ट नेमनाथ भगवान के समय में शैलकराज ऋषि शिथिलाचारी हो गये थे। (ज्ञाता-सूत्र, अध्ययन—५)

परीक्षा करनी चाहिये कि इस साधु की श्रद्धा, आचार शास्त्रोक्त प्रमाण से अखंड है या नहीं। जो अखण्ड रीति से पालन करने वाले हों तो, वे गुरु हैं; परन्तु जो ये अखंड चरित्र को पालन करने वाले न हों और मात्र फूटे हुये वर्तन की तरह हों तो समझदार मनुष्यों को उनको गुरु-रूप में मानना, पूजना या वन्दन करना नहीं चाहिये।

प्रश्न—पहले से धारण किये हुए गुरु किस प्रकार छोडे जा सकते हैं? चाहे वे शास्त्रोक्त प्रमाण से संयम न पालते हों और दूसरे साधु पालते हों तो भी गुरु तो वे ही माने जायेंगे कि जो परम्परा से अर्थात् बाप—दादाओं से चलते आये हों।

उत्तर—जो शास्त्रोक्त प्रमाण से नहीं चलते और शिथिलाचारी हैं उनको छोड देने मे जरा भी आपत्ति नहीं है। पहले के आत्मार्थी पुरुषों ने भी जिन गुरुओं को श्रद्धा और आचार में बुरा समझा, उनको छोड दिया था। उनके उदाहरण शास्त्रीय प्रमाण सहित निम्न प्रकार से हैं।(१) शकडाल पुत्र का गुरु गोशाला था। वह झूठा लगा, इसलिये उसको छोड़ कर शकडाल पुत्र ने श्रवण भगवान श्री महावीर प्रभु को गुरु रूप मे स्वीकार किया था।(शास्त्र-सूत्र, उपाशग दशाङ्ग, अध्ययन ७) (२) सुखदेव सन्यासी स्वयं एक हजार चेलों का गुरु था। उसने भी स्थावरचा पुत्र साधु के साथ चर्चा की और उनको धर्म गुरु के रूप मे स्वीकार किया और उनके पास दीक्षा भी ली (शास्त्र-सूत्र ज्ञाता, अध्ययन ५) इत्यादि शास्त्रों मे अनेक उदाहरण हैं, उनको ध्यान मे रख कर विचार करने से तो समझदार मनुष्य,

को धर्म-गुरु मानने में पहले अपना स्वार्थ आदि किसी भी कारण या एकान्त आत्म-हितैषी पुरुषों को जरूरत नहीं होती, क्योंकि, दूसरों को एकान्त कबूल करके, धर्म या मतमतान्तर बनाने में लाने को अपनी आत्मा का भव-भव का हित बिगड़ता है। विवेक-चक्षुओं से देख कर इस बात को विचारना चाहिये।

प्रश्न —उपरोक्त निर्ग्रंथ-गुरु की व्याख्या लिखने और प्रकाश करने का ध्येय अथवा कारण क्या है ?

उत्तर—यह व्याख्या लिखने और प्रकाश करने का ध्येय एक मात्र यही है कि भव्य-पुरुष निर्ग्रंथ-गुरु के लक्षण पूरी तरह समझ सकें इसके सिवाय किसी की निन्दा करने या किसी को हलका बतलाने का ध्येय नहीं है —यह इस लेख को ध्यान पूर्वक पढ़ने से पाठक अपने आप समझ सकेंगे। गुरु की महिमा बहुत अधिक है। गुरु के आश्रय बिना सत्साधन भी असत् रूप परिणमते हैं इसी लिए सच्चे गुरुतत्त्व को इतने विस्तार से बतलाया है। कहा भी है:—

सत चरण आश्रय विना, साधन कर्या अनेक;
पार न तेथी पामियो, उग्यो न अंश विवेक।
बहु साधन बंधन थयां, रह्यो न कोइ उपाय;
सत् साधन समज्यो नहिं, त्यां बंधन शुं जाय।

पहली ढाल

(भवियण जोवो रे हृदय बिमासी —ए देशी)

आधाकरमी उद्देशिक भोगवै तिणने,
निश्चय कह्या अणाचारी ।
दशवैकालिक रे तीजै अध्ययनें,
शका म आणो लिगारी रे ॥
भवियण जोयज्यो हृदय विमासी रे ॥ १ ॥
आधाकरमी उद्देशिक भोगवै तिणने,
भ्रिष्ट कह्या भगवान ।
दशवैकालिक रे छट्ठे अध्ययने,
निरणो करो बुद्धिमान रे ॥ भवि० ॥ २ ॥
आधाकरमी उद्देशिक भोगवै तिणने,
नर्कगामी कह्या भगवान ।
उत्तराध्ययन रे वीसमै अध्ययने,
निरणो करो बुद्धिमान रे ॥ भवि० ॥ ३ ॥
आधाकरमी उद्देशिक भोगवै, तिणरा
छओं व्रत भाग्या जाण ।

साधू काजे दड़ नीपै जठे,
कीड़ी मकोड़ी देवै दाटी ।
अनेक त्रस जीवां ने मारै त्यांरी,
विकलां री गत होसे माठी रे ॥ भवि० ॥ १० ॥
अनेक त्रस जीवा ने मारै,
अनेका पर देवै दाटी ।
कुगुरु काजे जीव इण विध मारै,
त्यारी अकल आडी आई पाटी रे ॥ भवि० ॥ ११ ॥
श्वास उश्वास रूंधि जीव मारै,
महामोहनी कर्म बधाय ।
कह्यो दशाश्रुत स्कंध सूत्र मे,
ते पिण विकला ने खबर न काय रे ॥भवि०॥१२॥
चीगटरो तिणखो नाखै जठे,
किड़ियां लाखा गमे आवै ।
घर नीपै दड़ रूंधै जठे,
किडियां लाखां गमे मर जावै रे ॥ भवि० ॥ १३ ॥
पोती कर्म दोप सेवै तिणने,
कह्या गृहस्थी ने भेप धारी ।
दोय पक्षरा सेवनहारा कह्या छै,
सूयगडाग दूजा श्रुतस्कध मॅंभारी रे ॥ भवि० ॥ १४ ॥
पोती कर्म दोप मे आधाकरमी,
दोष विशेप छै भारी ।

आधाकरमी उद्देशिक भोगवै तिणने,
साध सरधै ते मिथ्याती।
ठाणांग रे दशमे ठाणे कह्यो छै अर्थ,
मेुहडे तणी मति जाणो वाती रे ।। भवि० ।। २१ ।।
आधाकरमी उद्देशिक भोगवै,
ते छै भारी करमा।
शुद्ध बुद्ध वाहिरा जीव अज्ञानी,
केम पामे श्री जिनधरमा रे ।। भवि० ।। २२ ।।
आधाकरमी दोप सूतर सूं वतायो,
सूत्र मे दोप अनेक।
मोलरो लियो दोप कहूँ छूँ,
ते सुणज्यो आण विवेक रे।। भवि० ।। २३ ।।
मोलरो लियो भोगवै तिणने,
निश्चय कह्या अणाचारी।
दशवैकालिक रे तीजै अध्ययने,
शङ्का म आणो लिगारी रे।। भवि० ।। २४ ।।
मोलरो लियो भोगवै तिणने,
भिष्टी कह्या भगवान।
दशवैकालिक रे छट्ठे अध्ययने,
निर्णय करो बुद्धिमान रे ।। भवि० ।। २५ ।।
मोलरो लियो भोगवै तिणनै,
नर्कगामी कह्या भगवान।

नित रो नित एकण घर को वहिरै,
तिण ने निश्चय कह्या अणाचारी।
दशवैकालिक रे तीजै अध्ययने,
शका म आणो लिगारी रे ॥ भवि० ॥ ३२ ॥

नितरो नित एकण घर को वहिरै,
तिणने भ्रष्ट कह्या भगवान।
दशवैकालिक रे छट्ठे अध्ययने,
जोय करो पीछांण रे ॥ भवि० ॥ ३३ ॥

नितरो नित एकण घर को वहिरै,
तिणने नर्क गामी कह्या भगवान।
दशवैकालिक रे छट्ठे अध्ययने,
निरणय करो बुद्धिमान रे ॥ भवि० ॥ ३४ ॥

नित रो नित एकण घर को वहिरै,
तिण में छै मोटी खोड।
आचारांग पहले श्रुतखधे,
कह दिया भगवन्त चोर रे ॥ भवि० ॥ ३५ ॥

नित रो नित एकण घर को वहिरै
एक वार तिणने चौमासी प्रायश्चित देणो।
सदा नित रो नित ठेठ स्यू वहिरै,
तिणरे प्रायश्चित रो काई कहणो रे ॥भवि०॥ ३६ ॥

नित रो नित एकण घर को वहिरै,
तिणने सबलो दोपण लागै।

सदा नित रो नित ठेठ स्यूं वहिरै,
तिण रै प्रायश्चित रो काई थाग रे ॥ भवि० ॥३७॥
भागल भेपधारी नित रो नित वहिरै,
एकण घर को आहार।
पूछ्या थी पाधरा नहीं बोलै,
झूठ बोलै विविध प्रकार रे ॥ भवि० ॥ ३८ ॥
भागल भेपधारी नित रो नित वहिरै,
अेकण घर को आहार पाणी।
पूछ्या थकी पाधरा नहीं बोलै,
झूठ बोलै जाण जाणी रे ॥ भवि० ॥ ३९ ॥
आहार तणो सभोग न तोड्या,
ते पिण खाना ने काजै।
अेम माड लै रा आहार जुवा जुवा करै छे,
निर्लज्जा मूल न लाजै रे ॥ भवि० ॥ ४० ॥

ढाल दूजी

(रे मुनिवर जोव दया प्रतिपालो—ए देशी)
आधाकरमी स्थानक मांहे साध रहवै तो,
पहलोई महाव्रत भागो।
दया रहित कह्यो सूत्र भगवती मे,
अनन्ता जनम मरण करसी आगो रे॥
मुनिवर जीव दया प्रतिपालो ॥ ए आकडी ॥ १ ॥

जिण स्थानक निमिते ग्रंथ दियो तिण ने,
उतरा जीवां रो उण ने पापो।
धर्म जाणै तो पाप अठारमो,
होसे घणो सन्तापो रे ॥ मुनि० ॥ १३ ॥
साधु काजे दड नीपै छपरा छावै,
जीव अनेक विध मारै।
आप डूबं वलि वधे जीवा स्यू,
गुरा रो जनम विगाड़े रे ॥ मुनि० ॥ १४ ॥
ये धर्म ठिकाणे जीव हणो तो,
दया किसी ठोर पालो।
कुगुरा नें भरमाया तुमने,
काई लगावो कालो रे ॥ मुनि० ॥ १५ ॥
रात अंधारी ने जीव न सूझे तो,
आडा मत जड़ो किंवाडो।
छ. काय रा पीयर वाजे तो,
हाथ स्यूं जीव मत मारो रे ॥ मुनि० ॥ १६ ॥
जो थांने साची सीख न लागे,
तो मत लेवो साधविया रो शरणो।
साधां ने रहणो द्वार उघाड़े,
साधविया रे चाल्यो छे जडणो रे ॥ मुनि० ॥ १७ ॥
गृहस्थ साथे मेलो सदेशा,
जव मारी जावै छ कायो।

ते चतुर विचक्षण जाण हुसे तो,
थांने केम सरधै अणगारो रे ॥ मुनि० ॥ ७ ॥
दोप वैतालीस कह्या सूत्रमां,
बावन कह्या अणाचारो ।
ए दोप सेव्या सेवाया,
महाव्रत मे पडसे विगाडो रे ॥ मुनि० ॥ ८ ॥
आचारांग रे बीजे अध्ययने,
छठे उद्देशे निहालो ।
वचन सुण सुण ने हिये विमासो,
मत करो आल पंपालो रे ॥ मुनि० ॥ ६ ॥
कोई स्थानक निमित्ते ग्रन्थ देवै तिणने,
मुख स्यू मती सरावो ।
आपस मे छः काय जीवा ने,
सानी करि जीव ने काई मरावो रे ॥मुनि०॥ १० ॥
स्थानक करावना ने धर्म कही ने,
भोला ने मत भरमावो ।
आप रहवाने जग्या कारणे,
जीवा ने काई मरावो रे ॥ मुनि० ॥ ११ ॥
साधु काजे जीव हणे त्यारे,
होमे मूढ स्यू भूण्डो ।
जे साधु उण जग्यां म रहसी ना,
साधपणो तिणरो बूडो रे ॥ मुनि० ॥ १२ ॥

जिण स्थानक निमित्ते ग्रंथ दियो तिण ने,
　　उतरा जीवां रो हण ने पापो ।
धर्म जाणे तो पाप अठारमो,
　　होसे घणो सन्तापो रे ॥ मुनि० ॥ १३ ॥
साधु काजे दड नींपं छपरा छावै,
　　जीव अनेक विध मारै ।
आप डूबे वलि वधे जीवां स्यूं,
　　गुरां रो जनम विगाड़े रे ॥ मुनि० ॥ १४ ॥
ये धर्म ठिकाणे जीव हणो तो,
　　दया किसी ठोर पालो ।
कुगुरां ने भरमाया तुमने,
　　काई लगावो कालो रे ॥ मुनि० ॥ १५ ॥
रात अंधारी ने जीव न सूझे तो,
　　आडा मत जड़ो किवाड़ो ।
छः काय रा पीयर थाजे तो,
　　हाथ स्यूं जीव मत मारो रे ॥ मुनि० ॥ १६ ॥
जो थांने प्राणी सीत न लागे,
　　तो मत लेवो साधवियां रो सरणो ।
माया ने रड़गो द्वार उघाड़े,
　　साधवियां रे [illegible] झड़गो रे ॥ मुनि० ॥ १७ ॥
गृहस्थ माथे मेलो सहजा,
　　[illegible] मारो [illegible] कायो ।

वो जोयां बिना वेवे मारग में,
एहवो मन करो अन्यायो रे ॥ मुनि० ॥ १
ए साधपणो थां स्यूं पलनो न दीसै तो,
श्रावक नाम धरावो।
शक्ति सारू व्रत चोख्या पालो,
दोपण मती लगात्रो रे ॥ मुनि० ॥ १६
आचार थां स्यूं पलनो न दीसै तो,
औरां रे माथे मत न्हाखो।
भगवन्त ना फेडायत वाजो तो,
जूठ बोलतां क्यूं न शंको रे ॥ मुनि० ॥ २
व्रत विहूणा साधू वाजे,
यूं ही लोगां मे पूजावै।
ठाले बादल ज्यूं थोथा वाजै,
ओ मोनै अचरज आवै रे ॥ मुनि० ॥ २१ ॥
इत्यादिक आचार मांहि ने,
पूरो केम कहवायो।
हिंसा मांहि जो धर्म थापो ते,
पिण ग्बबर न कायो रे ॥ मुनि० ॥ २२ ॥
तेलो करै तिण ने तीन दिन कोई,
ऊनो पाणी कर पावै।
तिण ने मो आगले री श्रद्धा रे लेखै,
एकन्त पाप बतावै रे ॥ मुनि० ॥ २३ ॥

ढाल तीजी

(ऊँधे सरधा कोई मत राखो—ए देशी)

ओलखणा दोरी भव जीवा,

कुगुरु चरित अनन्त जी।

कहतां छेह न आवै तिणरो,

इम भाख्यो भगवंत जी॥

साधु मत जाणो इण चलगत सू॥ १॥

आधाकरमी थानक में रहे तो,

पड्यो चारित मे भेद जी।

निशीथ रे दशमे उद्देशे,

चार मास रो छेद जी॥ साधु०॥ २॥

अठारे ठाणा कह्या जूवा जूवा,

एक विराधै कोय जी।

चाल कह्यो श्री वीर जिणेश्वर,

साध म जाणो सोय जी॥ साधु०॥ ३॥

आहार सेज्या ने वसतर पातर,

असुध लिया नहीं सन्त जी।

दशवैकालिक छठे अध्ययने,

भिष्ट कह्यो भगवन्त जी॥ साधु०॥ ४॥

अचित वस्तु ने मोल लिरावै,

तो सुमत गुपत हुवै खण्ड जी।

जो थांरे मनमें शंका हुवे तो,
सूत्र काढी बताऊँ रे ॥ मुनि० ॥ २९ ॥
संवत अठारे बरस तेत्रीसे,
मेडता शहर मझारो ।
वैशाख वदी दशम दिन थांने,
सीख दीनी हितकारो रे ॥ मुनि० ॥ ३० ॥

दोहा

पहिला अरिहन्त ने नमूं, ज्यां सार्या आतम काम ।
वले विसेषे वीर ने, ते सासण नायक स्वाम ॥ १ ॥
तिण कारण साखी आपणा, पहुँता छे निरवाण ।
सिद्धा ने वंदणा करूँ, ज्या मेट्या आवण जाण ॥ २ ॥
आचारज सहु सारसा, गुण रतनारी खाण ।
उपाध्यायने सर्व साधुजी, ए पांचू पद वखाण ॥ ३ ॥
वांदीजे नित तेहने, नीचो शीस नमाय ।
गुण ओलख वंदणा करो, ज्यू भव भवरा दुख जाय ॥ ४ ॥
सुगुरु कुगुरु दोनू तणी, गुण बिना खबर न काय ।
प्रथम कुगुरुने ओलखो, सुणो सूतररो न्याय ॥ ५ ॥
सूतर साख दियां बिना, लोक न माने वात ।
साभलने नर नारियां छोडो मूल मिथ्यात ॥ ६ ॥
कुगुरु चरित अनन्त छे, ते पूरा केम कहाय ।
थोडामा परगट करूं ते सुणज्यो चित्त लाय ॥ ७ ॥

ाल तीजी

(ऊँधं। सरधा कोई मत राखो—ए देशी)

ओलखणा दोरी भव जीवा,
कुगुरु चरित अनन्त जी।
कहता छेह न आवै तिणरो,
इम भाख्यो भगवंत जी॥
साधु मत जाणो इण चलगत सू॥ १॥
आधाकरमी थानक में रहे तो,
पड्यो चारित मे भेद जी।
निशीथ रे दशमें उद्देशे,
चार मास रो छेद जी॥ साधु०॥ २॥
अठारे ठाणा कह्या जुवा जूवा,
एक विराधै कोय जी।
चाल कह्यो श्री वीर जिणेश्वर,
साध म जाणो सोय जी॥ साधु०॥ ३॥
आहार सेज्या ने वसतर पातर,
असुध लियां नहीं सन्त जी.
दशवैकालिक छठै अध्ययने,
भिष्ट कह्यो भगवन्त जी॥ साधु०॥ ४॥
अचित वस्तु ने मोल लिरावै,
तो सुमत गुपत हुवै खण्ड जी।

जो लावे नित धोवण पाणी,
तिण लोप्यो सूतर रो न्याय जी।
वतलाया वोले नहीं सूधा,
दूषण देवै छिपाय जी ॥ साधु० ॥ ११ ॥
नहिं कल्पै ते वस्तु वहिरै,
तिण मे मोटी खोड जी।
आचाराग पहिले श्रुतखंधे,
कह दियो भगवन्त चोर जी ॥ साधु० ॥१२॥
पहिलो वरत तो पूरो पडियो,
जव आडा जडै किंवाड़ जी।
कोटा आगल होडा अटकावै,
ते निश्चय नहिं अणगार जी ॥ साधु० ॥ १३ ॥
पोते हाथे जडै उघाडै,
करें जीवां रा ज्यान जी।
गृहस्थ उघाडने आहार वहिरावै,
जद करे अणहुंता फेन जी ॥ साधु० ॥ १४ ॥
साधवियां नैं जडणो चाल्यो,
तिण री म करो ताण जी।
या लारे कोई साधु जडै तो,
भागलरा अहनाण जी ॥ साधु० ॥ १५ ॥
मन करने जो जडणो वछे,
तिण नहिं जाणी पर पीड जी।

पैंतीसमा उत्तराध्ययनमे,

वरज गया महावीर जी ॥ साधु० ॥ १६ ॥

परनिन्दा मे राता माता,

चित्तमे नहिं सन्तोष जी।

वीर कह्यो दशमा अग माहे,

तिणमे तेरै दोष जी ॥ साधु० ॥ १७ ॥

कहै दीक्षा ले तो मो आगल लीजै,

और कनै दे टाल जी।

कुगुरु एहवा सूस करावै

आ चौडे ऊंधी चाल जी ॥ साधु० ॥ १८ ॥

इण बंधाथी ममता लागे,

गृहस्थ सूँ मेलप थाय जी।

निशीथ रे चौथे उद्देशे,

दंड कह्यो जिनराय जी ॥ साधु० ॥ १९ ॥

[illegible] नहिं [illegible] जावै,

आ साधाँ री नहिं रीत जी

वरज्यो आचारांग बृहत्कल्प मे,

वलि उत्तराध्ययन निशीथ जी ॥ साधु० ॥ २० ॥

आदर नहीं आरा मे जाता,

बैठा पान [illegible] जी।

[illegible] आहार ल्यावे [illegible] पातरां,

[illegible] जी ॥ साधु० ॥ २१ ॥

चेला करण री चलगत ऊंधी,
चाला बहोत चलाय जी।
लियाँ फिरे गृहस्थ ने साथे,
रोकड़ दाम दिराय जी ॥ साधु० ॥ २२ ॥
विवेक विकल ने साग पहिरावै,
भेलो करै आहार जी।
सामगिरि मे जाय वंदावै,
फिर फिर हुवै खुवार जी ॥ साधु० ॥ ॥ २३ ॥
अजोग ने दीक्षा दीधी ते,
भगवन्त नी आज्ञा बार जी।
निशीथरो दण्ड मूल न मानै,
ते विटल हुआ विकराल जी ॥ साधु० ॥ २४ ॥
विन पड़लेह्याँ पुस्तक राखे,
तो जमै जीवा रा जाल जी।
पड़ै कुंथवा ऊपजै माकड,
जिण वाधी भांगी पाल जी ॥ साधु० ॥ २५ ॥
जावै वरस ६ मास निकलियाँ,
तो पहिलो व्रत हुवै खण्ड जी।
नित पड़लेह्या विण मेलै तिण ने,
एक मास रो दण्ड जी ॥ साधु० ॥ २६ ॥
गृहस्थ साथे कहे सन्देशो,
तो भेलो हुवै सभोग जी।

काच मणि परकाश करै ज्यूं,
कुगुरु माया योथ जी ॥ साधु० ॥ ३८ ॥
दबक दबक उतावला चालै,
त्रस थावर मार्या जाय जी
इरज्या सुमत जोयां विन चालै,
ते किम साधु थाय जी ॥ साधु० ॥ ३६ ॥
कपडां में लोपी मरयादा,
लाम्बा पना लगाय जी।
अधका राखै दोय पुर ऊंडै,
वले बोलै मृपावाय जी ॥ साधु० ॥ ४० ॥
रुष्ट पुष्ट कर मास वधारै,
करै विगैरा पूर जी।
माठा परिणामा नारवाँ निरपै,
तो साधुपणा थी दूर जी ॥ साधु० ॥ ४१ ॥
उपगण जो अधिका राखै,
तिण मोटो कियो अन्याय जी।
निशीथ रे सोलमे उद्देशे,
चोमासी चारित जाय जी ॥ साधु० ॥ ४२ ॥
मूरख ने गुरु एडवा मिलिया,
ते लेइ डूबसी लार जी।
साचो मारग साधु बतावे,
तो लटराने हुए त्यार जी ॥ साधु० ॥ ४३ ॥

पछी विहार कर, दे घणी भल मण,
तिण प्रवचन दीधा ठेल जी ॥ साध० ॥ २१ ॥
पछे गृहस्थ आहमा मांहमा मेलनां,
हिंस्या जीवां री थाय जी।
तिण हिंसा सूं गृहस्थ ने साधु,
दोन् भारी हुवे ताय जी ॥ साध० ॥ २२ ॥
भार उपरावे गृहस्थ आगे,
ते किम साधु थाय जी।
निशीथ रे बारमे उद्देशे,
चौमासी चारित जाय जी ॥ साध० ॥ २३ ॥
वले विण पडलेह्यां रहे सदा नित,
गृहस्थ रा घर मांय जी।
ओ साधपणो रहसी किम त्यांरो,
जोवो सूतर रो थाय जी ॥ साध० ॥ २४ ॥
जो विण पडलेह्या रहे एकण दिन,
तिण ने डण्ड कह्यो मासीक जी।
निशीथ रे दूजे उद्देशे,
तिहां जाय करो तहतीक जी ॥ साध० ॥ २५ ॥
मात पितादिक सगा सनेही,
त्यांरा घरमें देवे राल जी।
त्यांने परिगरो साध दिरावे,
आ खोटे कुगुरु री चाल जी ॥ साध० ॥ २६ ॥

सानी कर साध दिरावै रुपिया,
वरत पाँचमों भाग जी।
वले पूछ्यां जूठ कपट सू बोलै,
त्यां पहिर बिगार्यो सांग जी ॥ साध० ॥ २७ ॥

न्यातीलाने दाम दिरावै,
तिण रे मोह न मिटियो कोय जी।
वले सार संभार करावै त्यांरो,
ते निश्चय साध न होय जी ॥ साध० ॥ २८ ॥

अनरथ रो मूळ कह्यो परिगरो,
ठाणाग तीजे ठाण जी।
तिणरी साध करै दलाली,
ते पूरा मूढ अजाण जी ॥ साध० ॥ २६ ॥

ऋतु उन्हाले पाणी ठारै,
गृहस्थरा ठाम मंझार जी।
मनमाने जब पाछा सूपै,
ते श्री जिन आज्ञा बार जी ॥ साध० ॥ ३० ॥

गृहस्थरा भाजन में साधु,
जीमे असणादिक आहार जी।
तिण ने भिष्ट कह्यो दशवैकालिक मे,
छठा अध्ययन मँझार जी ॥ साध० ॥ ३१ ॥

केई साग पहिर साधवियाँ बाजे,
पिण घट मांहि नहीं विवेक जी।

वले चौथो दोष पूछ्या झूठ बोलै,
    वासी राख्यो न कहै मूढ जी।
केइ भेषधारी छै एहवा भागल,
    त्यांरे झूठ कपट छै गूढ जी ॥ साध० ॥ ३८ ॥
औषध आद दे वासी राख्यां,
    वरतां मे पडै वधार जी।
कह्यो दशवैकालिक तीजै अध्ययने,
    वासी राखै तो अणाचार जी ॥ साध० ॥ ३९ ॥
कोई आधाकरमी पुस्तक वहिरै,
    वले तेहिज लीधा मोल जी।
ते पिण साहमां आण्यां वहिरै,
    त्यांरे मोटी जाणज्यो पोल जी ॥ साध० ॥ ४० ॥
कोई आप कने दीक्षा ले तिणरे,
    सानी कर मेले साज जी।
पुस्तक पानादिक मोल लिरावै,
    वले कुण कुण करे अकाज जी ॥ साध० ॥ ४१ ॥
गच्छवासी प्रमुख आज्ञा सूं,
    लिखावै सूतर जाण जी।
पहिला मोल कराय परत रो,
    संच कर दिरावे आण जी ॥ साध० ॥ ४२ ॥
रुपिया मेहलावै और तणे घर,
    इसडो सैंठो करे काम जी।

कोई श्रावक साध समीपे आवे,
हरपे वादे पग झाल जी।
जद साधु हाथ दे तिण रे माथे,
आ चोड़े कुगुरु री चाल जी ॥ साध ॥ ४६ ॥

गृहस्थ रे माथे हाथ देवे तो,
गृहस्थ बरोबर जाण जी।
एहवा विकलां ने साधु सरधे,
ते पिण विकल समान जी ॥ साध० ॥ ५० ॥

गृहस्थ रे माथे हाथ दियो तिण,
गृहस्थ सू कीधो संभोग जी।
तिणने साधु किम सरधीजे,
लागे जोगने रोग जी ॥ साध० ॥ ५१ ॥

दशवैकालिक आचारांग माही,
वले जोवो सूत्र निशीथ जी।
गृहस्थ ने माथे हाथ देवै,
आ प्रत्यक्ष ऊँधी रीत जी ॥ साध० ॥ ५२ ॥

चेला करे ते चोर तणी परें,
ठग पासीगर ज्यू ताम जी।
उजबक ज्यू तिणने उचकावै,
ले जाय मूडै और गाम जी ॥ साध० ॥ ५३ ॥

आछो आहार दिखाने तिण ने,
कपडादिक मही दिखाय जी।

इत्यादिक लालच लोभ बतावे,
भोलाने मूड भरमाय जी ॥ सा० ॥ ५४ ॥
इण विध चेला कर मत भोलो,
ते गुण बिन कोरो भेष जी.
साधपणां रो सांग पहिरने,
भारी हुवे विशेष जी ॥ साध० ॥ ५५ ॥
मूड मुंडाय भेलो कीधो,
त्यासू पले नहीं आचार जी ।
भूख तृषा पिण खमणी न आवे,
जद लेवे असुध पिण आहार जी ॥ साध० ॥५६ ॥
अनल अजोगने दीक्षा दीधा,
तो चारित्र रो हुवे खण्ड जी ।
निशीथ रे उद्देशे इग्यारहमे,
चौमासी रो डण्ड जी ॥ साध० ॥ ५७ ॥
विवेक विकल बालक बूढा ने,
पहिरावे साग सिताब जी
त्याने जीवादिक पदारथ नवरा,
जावक न आवे जाब जी ॥ साध० ॥ ५८ ॥
शिष्य करणो तो निपुण बुध वालो,
जीवादिक नव जाणे ताहि जी ।
नहीं तर एकल रहणो टोलामे,
उत्तराध्ययन बत्तीसमा माहि जी ॥ साध० ॥५९॥

केई दड़े लीपै हाथां सूं थानक,
ते पिण ढगलिया फूट जी।
इसडो काम करै तिण साधु
पाडी भेव मांहि फूट जी ॥ साध० ॥ ६० ॥

जो दड़े लीपै थानकने साधु,
तिण श्री जिन आज्ञा भग जी।
तीजा वरत री तीजी भावना,
तिहां वरज्यो दशमे अग जी ॥ साध० ॥ ६१ ॥

छतां साधवियां छै टोला में,
वले कारण न पड्यो कोय जी।
तो पिण दोय साधविया रहे छै,
ओ दोष उघाडो जोय जी ॥ साध० ॥ ६२ ॥

दोय साधवी करे चौमासो,
ते जिन आज्ञा मे नाहिं जी।
त्या ने वरज्यो छै व्यवहार सूतर मे,
पांचमा उद्देशा माहि जी ॥ साध० ॥ ६३ ॥

कारण विना अकेली साधवी,
असणादिक वहिरण जायं जी।
वले ठरडे पण एकलडी जावें,
ते नहिं जिन आज्ञा मांय जी ॥ साध० ॥ ६४ ॥

वले एकलडी ने रहणो वरज्यो,
इत्यादिक बोल अनेक जी।

[illegible]

ते समझो [illegible] जी ॥ साध० ॥ ६५ ॥

सुगुरु [illegible] होय आचारी,

भाषा सू दे [illegible] जी।

आप तणा [illegible],

जिन मारग दियो दिपाय जी ॥ साध० ॥ ६६ ॥

इसड़ा कुगुरां ने गुरु कर माने,

ज्यांरे अभ्यन्तर में अंधकार जी।

गुरु में खोट पाय अज्ञानी,

ते चाल्या जनम बिगाड़ जी ॥ साध० ॥ ६७ ॥

अशुभ कर्म ज्यांरे उदय हुआ जन,

इसड़ा गुरु मिलिया आय जी

दग्ध बीज होय जावक चूड़ा,

पञ्च चिहुं गत गोता खाय जी ॥ साध० ॥ ६८ ॥

इम सांभल उत्तम नर नारी,

छोड़ो कुगुरु नो संग जी।

सतगुरु सेवो सुध आचारी,

दिन दिन चढ़तं रंग जी ॥ साध० ॥ ६९ ॥

आ सज्झाय करी कुगुरु ओलखावण,

शहर पीपाड मझार जी।

संवत् अठारं ने वरस चौतीसे,

आसोज सुदी सातम बुधवार जी ॥ साध० ॥

दोहा

केई भेषधारी भूला थका, कर रह्या कूडी ताण।
ऊव्रत बतावै साधु रे, ते सूतर अरथ अजाण॥ १॥
त्यां सावपणो नहीं ओलख्यो, भूला भ्रम गिंवार।
सब सावद्य त्याग्यो मुख सू कहै, वले पापरो कहै अगार ।२।
आहार पाणी कपडादिक उपरै, उवे सदा रह्या मुरझाय।
एहवा भेष धार्यां रे ईव्रत खरी, पिण साधा रे इव्रत नहि काय ।३
च्यार गुण ठाणा इव्रत कही, त्या न दीसै व्रत लिगार।
देश व्रत गुण ठाणा पाँचमो, आगे सरव व्रती अणगार ।४।
जो साधा रे इव्रत हुवै, तो सर्वव्रती कुण होय।
त्यारा भाव भेद प्रगट करूं, ते सांभलज्यो सहु कोय ।५।

ढाल पाँचवीं

(आ अनुकम्पा जिन आज्ञामें—ए देशी)

चौबीसमां श्री वीर जिनेश्वर,
निरदोष आहार आणी ने खायो।
सुध परिणाम उदरमे उतार्यो,
तिण माहि मूरख पाप बतायो॥
इण पाखण्ड मनरो निरणो कीजो॥ १॥
अनन्त चौबीसी मुगत गई ते,
आहार लाया था दोषण टालो।

तिण मांहि पाप बतावै अज्ञानी,
त्यां सगलां रे शिर दीधो आलो ॥ इण० ॥ २ ॥
सर्व सावद्य जोग रा त्याग करीनें,
सर्व व्रती सुध साध कहावै ।
तिरण तारण पुरुषां रे अज्ञानी,
इव्रतरो आगार बतावै ॥ इण० ॥ ३ ॥
गोतम आदि दे साध अनन्ता,
साधवियां रो छेह न पारो ।
सगलां रो आहार अधर्म मांहि घाल्यो,
तिण आंख मीचने कीधो अधारो ॥ इण० ॥ ४ ॥
साधुरो जनम हुवो जिण दिन थी,
कल्पै ते वस्तु वहिरी ने लावै ।
ते पिण अरिहन्त नी आगन्यासू,
तिण माहि मूरख पाप बतावै ॥ इण० ॥ ५ ॥
वसतर पातरा रजोहरणादिक,
साधु रा उपध सूतर माहि चाला ।
अरिहन्त री आगन्या सू राख्या,
अधर्म माहे अज्ञानी घाल्या ॥ इण० ॥ ६ ॥
दशवेकालिक ठाणा अंग मे,
प्रश्न व्याकरण उववाई माहो ॥
धरम उपध साधु रा वरतंग,
तिण माही दुष्टी पाप बतायो ॥ इण० ॥ ७ ॥

किण ही गृहस्थ लीलोतरी ने त्यागी,
जीवे ज्यां लग आण वैरागो।
साधपणो लई इव्रत सरधै,
तो विवेक विकल खायवा काई लागो ॥ इण०॥८॥
अधर्म जाणे लीलोतरी खाधा,
तो पचखाण भागो किण लेखं।
घरमे थका जाव जीव त्यागी थी,
इण साहमो मूरख क्यू नहि देखे ॥ इण० ॥ ९ ॥
किण ही गृहस्थ जे जे वस्तु त्यागी थी,
तो अधर्मरो मूल इव्रत जाणो।
साधपणो लेइ सेववा लागो,
ते क्यू न पाले लिया पचखाणो ॥ इण० ॥ १० ॥
इव्रत सरधे ने सूंस न पाले,
तिण भागल रे छै भारी कर्मो।
मारग छोडने ऊजड परिया,
साध आहार किया में सरधै अधर्मो ॥ इण०॥११॥
करै वैयावच्च चेला गुरुरी,
कर्म तणी क्रोड तेह खपावे।
तीर्थङ्कर गोत्र बंधे उत्कृष्टो,
पिण गुरुने मूरख पाप बतावे ॥ इण० ॥ १२ ॥
दश बीस चेला पडीकमणा कर्नें
गुरुरी वैयावच्च करवाने आवे।

तो गुरु ने पाप लगाय अज्ञानी,
दुरगत मांय कोय पहुंचावे ॥ इण० ॥ १३ ॥
गुरु ने पाप लागे वैयावच्च कराया,
सूत्र माहि कठे ही न घाल्यो ।
मूढ मती जीव भारी करमा,
ओ पिण धोचो अणहुन्तो घाल्यो ॥ इण० ॥१४॥
गुरु ने पापमूं मेला कियामें,
चेला रा कर्म कटै किण लेखे ।
अभ्यन्तर फूटी ने अन्ध थया ते,
सूतर सांह्मो मूढ मूल न देखे ॥ इण० ॥ १५ ॥
साध मोह्े माहि देव न लेवै,
वसतर पातर आहार ने पाणी ।
ते पिण लीधा में पाप वतावे,
एहवी कुपातर बोले वाणी ॥ इण० ॥ १६ ॥
दातार ने धर्म साधा ने वहिराया,
पिण साध वहिरी हुवा पाप सूं भारी ।
दातार तिरिया साध डवोया,
आ पिण सरधा कहै भेषधारी ॥ इण० ॥ १७ ॥
जो पाप लागे साधु आहार किया में,
तिण रे पाप रो साज दियां दातारो ।
तिणरी आशा रा्खै किण लेखे,
भूला रे भूला थे मूढ गिंवारो ॥ इण० ॥ १८ ॥

साधा तो पाप अठारै ही त्याग्या,
चोखी छै ज्यांरी सुमति ने गुपति ।
दातार कने सुध जांच लियां में,
पाप कठे सूं लागो रे कुमती ॥ इण० ॥ १९ ॥
गुरु दीक्षा देइ शिष्यणी करै ते,
निर्जरा रा भेद मांहे घाल्या ।
मोह मिथ्यात सूं भारी करमा,
ए पिण परिगरामां घाल्या ॥ इण० ॥ २० ॥
छठै गुण ठाणे परमाद कहीने,
साधां रे इव्रत थापै न्याचारी ।
पूछे तो कहे म्हे सरब व्रती छां,
ओ पिण झूठ बोलै भेषधारी ॥ इण० ॥ २१ ॥
छठै गुणठाणे परमाद कह्यो ते,
दिगटिक ढीलो लागणो जाणो ।
विण कषाय अशुभ जोग आयो,
पिण सूंसनी करै [illegible] लागो ॥ इण० ॥ २२ ॥
प्रमाद वसे आहार कपड़ सूं,
कर रह्या [illegible] कुशी निरवाहो ।
आहार [illegible] [illegible] पिण आणै,
[illegible] [illegible] [illegible] परमाणो ॥ इण० ॥ २३ ॥
[illegible]
[illegible]

आहार उपध उवे पिण भोगवता,
त्यां साधां ने प्रमाद क्यूं नहीं लागे ॥ इण० ॥२४॥
केवली आचरियो छद्मस्थ आचरै,
केवली त्यागो ते छद्मस्थ त्यागै ।
आहार उपध केवली ज्यूं भोगवियां,
तिण साधांने प्रमाद किण विध लागै ॥ इण०॥२५॥
साध आहार करता चारित कुशले,
सुध परिणाम सूं कटै आगला कर्मो ।
जद ऊन्धमती कोइ मवलो बोलै,
घणो खावो ज्यूं घणो होवै धर्मो ॥ इण० ॥ २६ ॥
पोहर रात तांई साध ऊँचे शब्दे,
धर्म कथा कहै मोटे मडाणो ।
उण ऊधमती री सरधारे लेखे,
आखी रातमे करणो बखाणो ॥ इण० ॥ २७ ॥
जैणा सूं साधु करै परलेहण,
काटवा कर्म आत्मने उद्धरणी ।
उण ऊन्धमती री सरधारे लेखै,
आखो ही दिन परलेहण करणी ॥ इण० ॥ २८ ॥
मरजादा में आहार साधा ने करणो,
मरजादा में करणो बखाणो ।
मरजादा में परलेहण करणो,
समझो रे समझो थे मूढ अयाणो ॥ इण० ॥ २९ ॥

छः कारण आहार साधा ने करणो,
घणो घणो स्वामी जिण लेखें।
छाईसमां उत्तराध्ययन में छै,
यले छट्ठो ठाणो मूढ क्यूं नहिं देखें ॥ इण० ॥ ३० ॥

कहे धर्म हुवें साधु आहार कियां में,
तो क्याने करें आहार रा पचखाणो।
पाप जाणी ने त्याग करें छै,
उलट बुद्धि बोलै एहवी वाणो ॥ इण० ॥ ३१ ॥

साधु काउसग में त्यागो हालवो चालवो,
वले मुख सूं न बोलें निरवद्य वाणो।
उण उलट बुद्धि री सरधा रैं लेखें,
ए पिण पाप तणा पचखाणो ॥ इण० ॥ ३२ ॥

कोई साध बोलण रा त्याग करी मून साजें,
धर्म कथा मांडी न करै वखाणो।
उण उलट बुद्धि री सरधा रैं लेखें,
ए पिण पाप तणा पचखाणो ॥ इण० ॥ ३३ ॥

कोई साधु साधां ने आहार देवण रा,
त्याग करै मन उछरंग आणो।
उण उलट बुद्धि री सरधा रैं लेखै,
ए पिण पाप तणा पचखाणो ॥ इण० ॥ ३४ ॥

केई साधु साधां री न करैं वैयावच्च,
त्याग करै मन उछरंग आणो।

उण उलट बुद्धि री सरधा रै लेखै,
  ए पिण पाप तणा पच्चखाणो ॥ इण० ॥ ३५ ।
साधा मूल गुण मे सरब सावज त्याग्यां,
  तिण सू नवा पाप न लागै जाणो ।
आगला कर्म काटण साधा रे,
  उत्तर गुण छै दश विध पच्चखाणो ।
  आ सरधा श्री जिनवर भाषी ॥ए आकडी ॥ ३६
कोई वास बेलादिक करै संथारो,
  कोई साध करै नित रो नित आहारो ।
पाप रा त्याग दोयां रे सरिखा,
  पिण तप तणो छै भेदज न्यारो ॥ आ० ॥ ३७ ॥
जैणा सू चाल्या जैणा सू ऊभा,
  जैणा सू बैठा जैणा सू सुवता ।
जैणा सू भोजन किया जैणा सू बोल्या,
तिण साधु ने पाप न कह्यो भगवन्ता ॥ आ० ॥ ३८ ॥
दशवैकालिक चौथे अध्ययने,
  आठमी गाथा अरिहन्त भाखी ।
छ. बोल साधु जैणा सू किया मे,
  पाप कह भारी करमा अन्हाखी ॥ आ० ॥ ३९ ॥
निरवद्य गोचरी श्रुपेश्वरां री,
  मोक्षरी साधन भगवन भाखी ।

दशवैकालिक पांच मे अध्ययने,
 बागुमी गाथा बोलें साखी ॥ आ० ॥ ४० ॥
सुध आहार कियां साधु सद्गत जावें,
 निरदोष दियां जावे सद्गत दाता ।
दशवैकालिक पाचमे अध्ययने,
 पहिला उद्देशा री छेहली गाथा ॥ आ० ॥ ४१ ॥
सात कर्म साधु ढीला पाडै,
 सूझतो आहार करे तिण कालो ।
भगवती सूतर पहिले श्रुत स्कंधे,
 नवमो उद्देशो जोय संभालो ॥ आ० ॥ ४२ ॥
आहार करे गुरु री आगन्या सूं,
 तिण साधु ने वीर कह्यो छै मोक्षो ।
अठारमो अध्ययन ज्ञाता रो जोई,
 सामो काटो मेटो मन रो धोखो ॥ आ० ॥ ४३ ॥
शब्द रूप गंध रस फरसरी,
 भावां रे इव्रत मूल न कायो ।
सूयगडाग अध्ययन अठारमे,
 और उववाई सूत्र मायो ॥ आ० ॥ ४४ ॥
साधा रे इव्रत कहे पाखण्डी,
 तिण कुमती री सगत दूर निवारो ।
इम साभल ने उत्तम नरनारी,
 सर्व व्रती गुरु माथे धारो ॥ आ० ॥ ४५ ॥

दोहा

[illegible] ॥ १ ॥

[illegible] ॥ २ ॥

साधु [illegible] पूरा हुवां, [illegible] में [illegible] ।
असाधु महिमा अति घणी, [illegible] भाग ॥ ३ ॥

कुगुरु कुधर्म में, घणा लोक [illegible] होय ।
ओलखा ने निरणां करे, ते तो विरला जोग ॥ ४ ॥

साध मारग छै साकड़ो, भोला ने खबर न काय ।
जिम दीवें पड़े पतगियो, तिम पड़े घणां में जाय ॥ ५ ॥

घणा साधु ने साधवी, श्रावक श्राविका लार ।
उलटा पड़ी जिण धर्म थी, पड़सी नरक मझार ॥ ६ ॥

महा निशीथमे में सुणी, गुण विन धारी भेख ।
लाखां कोडा गमे सांवठा, नरक पडतां देख ॥ ७ ॥

लीधा व्रत न पालसी, खोटी दिष्ट अयाण ।
तिण ने कही छे नारकी, कोई आप म लेज्यो ताण ॥ ८ ॥

आगम थी अवला वहै, साधु. न
सुध करणी थी वेगला, ते कह्या कठ

सिज्यातर पिण्ड भोगवै,
वले कुतुहल फेलवै कपटी रे।
धणी छोड आग्या ले और री,
सरस आहारादिक रा लंपटी रे ॥तिण० ॥ ५ ॥
सबलो दोषण लागे तेहने,
निशीथ मे दण्ड भारी रे।
अणाचारी कह्यो दशवैकालिके,
भगवन्त री सीख न धारी रे ॥ तिण० ॥ ६ ॥
अणुकम्पा आण श्रावक तणी,
द्रव दिरावण लागे रे।
दूजे करण खंड हुवो व्रत पांचमो,
तीजे करण पांचू ही भागे रे ॥ तिण० ॥ ७ ॥
गृहस्थ जिमावण री करे आमना,
वले करे साधु दलाली रे।
चौरासी डंड कह्यो निशीथमे,
वरत भाग हुवो खाली रे ॥ तिण० ॥ ८ ॥
करे थामादिक नो वाधवो,
वले किया भीत ना चेजा रे।
छायो लिप्यो तेहने कहीजे,
सागे कर्म सेजा रे ॥ तिण० ॥ ९ ॥
पहवी वसती भोगवे,
ते साधु नहीं लवलेशो रे।

मासिक दंड कह्यो तेहने,
निशीथ रे पांचमें उद्देशो रे ॥ तिण० ॥ १० ॥
चारे परदा पंच कनात ने,
वले चन्द्रवा चिरकी ने ठाटा रे।
साधु अरथे करावै ते भोगवै,
ज्यांरा ज्ञानादिक गुण न्हाठा रे ॥ तिण० ॥ ११ ॥
थापी तो थानक भोगवे,
त्यां दियो महाव्रत भांगो रे।
भावे साधुपणा थी वेगला,
त्यां ने गुण विन जाणो नागो रे ॥ तिण० ॥ १२ ॥
काच चसमो वरज्यो ते राखियो,
वले जाणे छै दोषण थोरो रे।
पांचमो व्रत पूरो पड्यो,
वले जिण आगन्यारो चोरो रे ॥ तिण० ॥ १३ ॥
गृहस्थ आयो देखी मोटका,
हाव भाव सूं हरखित हुवा रे।
बिठावण रो करै आमना,
ते साधपणा थी जुवा रे ॥ तिण० ॥ १४ ॥
गृहस्थ आयो साथ तेडवा,
कपडो वहिरावण लइ आवे रे।
ण विध वहिरै तेह ने
चारित किण विध पावै रे ॥ तिण० ॥ १५ ॥

प्रवचन न्याय न मानिये,
　　लियो मुगत सू मारग न्यारो रे ॥ तिण० ॥ २१ ॥
गृहस्थ उपधरा करे जावता,
　　किया वरत चकचूरो रे।
सेवग हुआ संसारिया,
　　साधुपणा थी दूरो रे ॥ तिण० ॥ २२ ॥
साता पूछे पूछावै गृहस्थ री,
　　इन्नत सेवण लागा रे।
अणाचारी कह्यो दशवैकालिके,
　　चले पाँचू ही महाव्रत भागा रे ॥ तिण० ॥ २३ ॥
श्रावक ने वले श्राविका,
　　करै माहोमाही कारज रे।
साता पूछै विनो वैयावच करै,
　　तिण मे धर्म परूपै अनारज रे ॥ तिण० ॥ २४ ॥
अणाचार पूरा नहीं ओलख्या,
　　नव भांगा किण विध टालै रे।
गृहस्थ ने सिखावे सेवना,
　　लीधा व्रत नहीं संभालै रे ॥ तिण० ॥ २५ ॥
कारण पडियाँ लेणो कहे साध ने,
　　करै असुध वहिरण री थापो रे।
दातार ने कहै निर्जरा घणी,
　　वली थोरो वतावै पापो रे ॥ तिण० ॥ २६ ॥

एहवी ऊंधी करैं परूपणा,
घणा जीवांने उलटा नाखैं रे ।
अण विचारी भाषा बोलता,
भारी कर्मा जीव न शाकै रे ॥ तिण० ॥ २७ ॥
भिष्ट आचार री करै थापना,
कहे कहे दुखम कालो रे ।
ढिवडा आचार छे एहवो,
घणा दोपण रो न हुवै टालो रे ॥ तिण० ॥ २८ ॥
एक पोते तो पालैं नहीं,
वले पाले तिण सू द्वेषो रे ।
दोय मूरख कह्या तेहने,
पहिलो आचाराग देखो रे ॥ तिण० ॥ २६ ॥
पाट बाजोट आणे गृहस्थ रा,
पाछा देवण री नहिं नीतो रे ।
मरजादा लोप ने भोगवे,
तिण छोडी जिण धर्म री रीतो रे ॥ तिण० ॥ ३० ॥
तिण ने डंड कह्यो एक मास नो,
निशीथ रे उद्देशे बीजे रे ।
न्याय मारग परूपना,
भारी करमा सुण सुण खीजे रे ॥ तिण० ॥ ३१ ॥

———:o:———